हिन्दू नीतिशास्त्र में विवाह : तत्वज्ञान संबंधी अध्ययन

प्रियंका

शोध छात्रा
दर्शनशास्त्र विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश : विवाह एक सार्वभौमिक सामाजिक संस्था है, जो विश्व के प्रत्येक भाग में पाई जाती है। विवाह के द्वारा न केवल परिवार का निर्माण होता है, बल्कि व्यक्ति को समाज में एक विशिष्ट सामाजिक प्रस्थिति भी प्राप्त होती है। यद्यपि विश्व के प्रत्येक भाग में चाहे वह आधुनिक हो या प्राचीन, शहरी हो या ग्रामीण, सभ्य हो या जनजातीय, विवाह अवश्य पाय जाता है, लेकिन फिर भी विभिन्न समाजों में इसके विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। हिन्दुओं में विवाह को सामान्यतः एक संस्कार (Sacrament) के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारतीय समाज में प्रत्येक हिन्दू व्यक्ति के लिए विवाह एक अनिवार्य शर्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दुओं में पुरूषार्थ में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य माना गया है जिनकी पूर्ति विवाह द्वारा ही सम्भव है। हमारे समाज में अविवाहित व्यक्ति को अपवित्र माना गया है तथा उसे धार्मिक दृष्टि से अपूर्ण मानकर विभिन्न संस्करों में भाग लेने योग्य नहीं माना गया है। इस शोध पत्र में हिन्दुओं में विवाह, विवाह के प्रकार, उसकी विशेषता एवं दोषों का अध्ययन किया गया है।

शब्द कुंजी : हिन्दू विवाह, संस्कार, पुरूषार्थ, धर्म, काम व मोक्ष।

I. परिचय

मानव की विभिन्न प्राणीशास्त्रीय आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि एक आधारभूत आवश्यकता है। मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी यौन–इच्छाओं की पूर्ति करते है, लेकिन उनमें इसका केवल दैहिक आधार है। मानव में यौन–इच्छाओं की पूर्ती का आधार अंशतः दैहिक, अंशतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक है। यौन–इच्छाओं की सन्तुष्टि ने ही विवाह, परिवार तथा नातेदारी संस्थाओं को जन्म दिया है। परिवार के बाहर यौन सन्तुष्टि सम्भव है, किन्तु समाज ऐसे सम्बन्धों को अनुचित मानता है। कभी–कभी कुछ समाजों में परिवार के बाहर यौन सम्बन्धों को संस्थात्मक रूप में स्वीकार किया जाता है, किन्तु वह भी एक निश्चित सीमा तक ही। यौन इच्छाओं की पूर्ति स्वस्थ जीवन एवं सामान्य रूप से जीवित रहने के लिए भी आवश्यक मानी गयी है। इसके अभाव में कई मनोविकृतियाँ पैदा हो जाती है। यौन इच्छा की पूर्ति किस प्रकार की जाय, यह समाज और संस्कृति द्वारा निश्चित होता है। विवाह का उद्देश्य सदैव ही यौन–सन्तुष्टि नहीं होता है वरन् कभी–कभी तो यह केवल सामाजिक–सांस्कृति उद्देश्य की पूर्ती के लिए ही किया जाता है। हम यहाँ विवाह के अर्थ, उद्देश्य एवं प्रकार पर विचार करेंगे।

विवाह क्या है ?

विवाह का शाब्दिक अर्थ है, 'उद्वह' अर्थात वधू को वर के घर ले जाना।[1] विवाह को परिभाषित करते हुए लूसी मेयर लिखती है ''विवाह की परिभाषा यह है कि वह स्त्री–पुरूष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से जन्मा बच्चा माता–पिता की वैध सन्तान माना जाय।''[2]

डब्ल्यू० एच० आर० रिवर्स के अनुसार, ''जिन साधनों द्वारा मानव समाज यौन सम्बन्धों का नियमन करता है, उन्हें विवाह की संज्ञा दी जा सकती है।''[3]

बेस्टरमार्क के अनुसार, ''विवाह एक या अधिक पुरूषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तव्यों का समावेश होता है।''[4]

बोगार्डस के अनुसार, ''विवाह स्त्री और पुरूष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की एक संस्था है।''[5]

मजूमदार एवं मदान लिखते है, ''विवाह में कानूनी या धार्मिक आयोजन मे रूप में उन सामाजिक स्वीकृतियों का समावेश होता है जो दो विषम–लिगियों को यौण–क्रिया और उससे सम्बन्धित सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धों में सम्मिलित

होने का अधिकार प्रदान करती है।''[6] उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि विवाह दो विषम लिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, धार्मिक अथवा कानूनी स्वीकृति है। स्त्री–पूरूषों एवं बच्चों को विभिन्न सामाजिक व आर्थिक क्रियाओं में सहगामी बनना, सन्तानोत्पत्ति करना तथा उनका लालन–पालन एवं समाजीकरण करना विवाह के प्रमुख कार्य है। विवाह के परिणामस्वरूप माता–पिता एवं बच्चों के बीच कई अधिकारों एवं दायित्वों का जन्म होता है।

विवाह के उद्देश्य

विभिन्न परिभाषाओं के आधार उद्देश्यों को हम इस प्रकार से प्रकट कर सकते है :

(1) यौन इच्छाओं की पूर्ती एवं समाज में यौन क्रियाओं का नियमन करना।
(2) परिवार का निर्माण करना एवं नातेदारी का विस्तार करना।
(3) वैध सन्तानोत्पत्ति करना व समाज की निरन्तरता को बनाये रखना।
(4) सन्तानों का लालन–पालन एवं समाजीकरण करना।
(5) स्त्री–पुरूषों में आर्थिक सहयोग पैदा करना।
(6) मानसिक सन्तोष प्रदान करना।
(7) माता–पिता एवं बच्चों में नवीन अधिकारों एवं दायित्वों को जन्म देना।
(8) संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तानांतरण करना।
(9) धार्मिक, सामाजिक एवं संस्कृति उद्देश्यों की पूर्ति करना।
(10) सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

भारत में विवाह के प्रकार

पति–पत्नी की संख्या के आधार पर भारत में पाये जाने वाले विवाहों के प्रमुख प्रकारों को हम निम्नांकित प्रकार से रंखांकित कर सकते है :

विवाह के प्रकार

1. एक–विवाह
2. बहुविवाह
3. बहुपत्नी विवाह
4. बहुपति विवाह
5. द्वि–पत्नी विवाह समूह विवाह

उपर्युक्त सभी प्रकार कें विवाहों का हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख करेंगे :

1. एक विवाह (Monogamy)

श्री वुकेनोविक (Vukenovic) के अनुसार उस विवाह को एक–विवाह कहना चाहिए जिसमें न केवल एक पुरूष की एक पत्नी या एक स्त्री का एक ही पति हो बल्कि दोनों में से किसी की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा पक्ष अन्य विवाह न करे। एक विवाह में एक समय में एक पूरूष एक ही स्त्री से विवाह करता है। इसके भी कई रूप पाय जाते हैं। एक रूप वह जिसमें एक पुरूष का एक स्त्री से विवाह होता है और किसी एक पक्ष की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा पक्ष विवाह नहीं करता। दूसरा रूप वह जिसमें एक पुरूष एक स्त्री से विवाह करता है किन्तु रखैल रूप में कई स्त्रियाँ रख सकता है। तीसरा रूप वह है जिसमें तलाक या मृत्यु हो जाने पर दूसरा विवाह कर सकता है। तीसरा रूप वह है जिसमें तलाक या मृत्यु हो जाने पर विवाह कर लिया जाता है।

वर्तमान में एक–विवाह को विवाह का सर्वश्रेष्ठ रूप समझा जाता है। बेस्टरमार्क ने एक–विवाह को ही विवाह का आदी स्वरूप माना है। मैलिनोवस्की की भी मान्यता है कि ''एक–विवाह ही विवाह का अच्छा स्वरूप है, रहा था और रहेगा।''[7] वर्तमान में हिन्दू विवाह अधिनयम, 1995 के द्वारा एक–विवाह को आवश्यक कर दिया गया है। शिक्षा एवं सभ्यता के विकास के साथ–साथ एक–विवाह का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है।

एक–विवाह के लाभ (Merits of Monogamy)

(1) एक–विवाह से निर्मित परिवार अपेक्षतया अधिक स्थायी होते हैं। (2) ऐसे विवाहों से निर्मित परिवारों में स्त्री की प्रतिष्ठा ऊँची होती है। (3) एक–विवाह परिवारों में बच्चों का लालन पालन, समाजीकरण एवं शिक्षा का कार्य उचित रूप से सम्पत्र होता है। (4) एक–विवाह परिवारों में संषर्घो के अभाव में मानसिक तनाव भी कम पाया जाता है। (5) एक–विवाह परिवार का जीवन–स्तर ऊँचा होता है। (6) एक–विवाह परिवार में सन्तानों की संख्या कम होती है, अतः परिवार छोटा एवं सुखी होता है।

एक–विवाह प्रथा के दोष (Demerits of Monogamy)

(1) एक–विवाह के कारण यौन अनैतिकता में वृद्धि होती है और भ्रष्टाचार बढ़ता है। इससे स्त्री–पुरूष के विवाह के अतिरक्ति यौन सम्बन्ध (Extra-marital sex relations) स्थापित करने के अवसर बढ़ जाते है। (2) यौन सम्बन्धी परिवार में एकाधिपत्य की प्रवृत्ति पायी जाती है और स्त्रियों का शोषण होता है।

2. बहु–विवाह (POLYGAMY)

जब एकाधिक पुरूष अथवा स्त्रियाँ विवाह बन्धन में बँधते है तो ऐसे विवाह को बहु–विवाह कहते है। बहु–विवाह के प्रमुख चार रूप पाये जाते है–बहुपति विवाह बहुपत्नी विवाह, द्वि–पत्नी विवाह एवं समूह विवाह। हम यहाँ इनका संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

(अ) बहुपति विवाह (Polyandry)

बहुपति विवाह को परिभषित करते हुए डॉ० रिवर्स लिखते है, ''एक स्त्री का कई पतियों के साथ विवाह सम्बन्ध बहुपति विवाह कहलाता है।'' डॉ० कापड़िया के अनुसार, ''बहुपति विवाह एक से अधिक पति होते हैं या जिसमें सब भाई एक पत्नी या पत्नियों का सम्मिलित रूप से उपभोग करते है।''

स्पष्ट है कि बहुपति विवाह में एक स्त्री का एकाधिक पुरूषों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होता है।

अति प्राचीन काल से ही भारत में बहुपति प्रथा का प्रचलन रहा है, यद्यपि यह प्रचलन सीमित मात्रा में ही रहा है। वैदिक साहित्य में बहुपति प्रथा की सख्य मनाही थी किन्तु महाभारत काल में ऐसे विवाहों के कुछ उदाहरण पाये जाते हैं। द्रौपदी का विवाह पाँच पाण्डव भाइयों से हुआ था। किन्तु इसे नियम नहीं मानकर एक असाधरण घटना ही माना जाता है। द्रविड़ संस्कृतिक समूहों में भी बहुपतित्व की प्रथा रही है। यह प्रथा देहरादून के जौनसार बाबर परगना, टिहरी, गढ़वाल तथा शिमला की पहाड़ियों में रहने वाले खस राजपूतों, नीलगिरि की पहाड़ियों में रहने वाले टाडा एवं कोटा लोगों,लद्दाखी बोटा, मद्रास के तियान एवं इरावा, मालाबार के नायर, हरावान तथा कम्पाला, कम्बेल; कुर्ग वासियों एवं कुछ समय पूर्व तक छोटा नागपुर की संथाल एवं मध्य भारत की उरांव जनजाति में प्रचलित रही है। किन्तु वर्तमान में धीरे–धीरे इस प्रकार के विवाह का प्रचलन समाप्त होता जा रहा है।

बहुपति विवाह के भी दो रूप पाये जाते है–(प) भ्रातृक बहुपति विवाह, एवं (पप) अभ्रातृक बहुपति विवाह।

(i) भ्रातृक बहुपति विवाह (Fraternal or Adelphic Polyandry)– जब दो या अधिक भाई मिलकर किसी एक ही स्त्री से विवाह करते है अथवा सबसे बड़ा भाई किसी एक स्त्री से विवाह करता है और अन्य स्वतः ही उस स्त्री के पति माने जाते है तो इस प्रकार के विवाह को भ्रातृक बहुपति विवाह कहते है। भ्रातृक बहुपति विवाह का प्रचलन खस, टोडा एवं कोटा तथा पंजाब के पहाड़ी भागों, लद्दाख, कांगड़ा जिला के स्पीती और लाहोल परगनों में पाया जाता है। खस लोगों में सबसे बड़ा भाई ही विवाह करके स्त्री लाता है और शेष स्वतः ही उस स्त्री के पति बन जाते है। नीलगिरि पर्वत के टोडा लोगो में भी भ्रातृक बहुपति विवाह का प्रचलन है। डॉ० रिवर्स का कहना है कि कभी–कभी सभी भाइयों के स्थान पर सगोत्री भाई मिलकर भी एक स्त्री से विवाह कर लेते है। इन लोगों में सन्तान निर्धारण का एक सांस्कृतिक तरीका प्रचलित है। जब स्त्री गर्भवती होती है तो भाइयों में से कोई भी भाई गर्भकाल के पाँचवे पहीने में स्त्री को एक तीर व धनुष भेंट करता है, यह प्रथा 'पुरसुतपिमी' के नाम से जानी जाती है। यही भाई होने वाली सन्तान का सामाजिक रूप से पिता माना जाता है, चाहे प्रणीशास्त्रीय रूप से उसका पिता कोई अन्य भाई ही क्यों न हो।

अधिकांशतः सामाजिक पितृत्व सबसे बड़े भाई को ही प्रदान किया जाता है, फिर भी भाई समान रूप से पिता माने जाते हैं। सन्तानों को उनके पिता का नाम पूछने पर प्रीावशाली एवं प्रसिद्ध भाई का ही नाम लिया जाता है।

(ii) भ्रातृक बहुपति विवाह (Non-Fraternal Adelphic Polyandry) – इस प्रकार के विवाह में पति परस्पर भाई नहीं होते है। स्त्री बारी–बारी से समान अवधि के लिए प्रत्येक पति के पास रहती है। यह प्रथा टोडा तथा नायरों में पायी जाती है।

मातृ–पक्षीय बहुपति विवाह परिवार में स्त्री अपनी माँ के परिवार में या मूल निवास स्थान पर ही रहती है और पति ही बारी–बारी से वहाँ निवास के लिए आते रहते है। यह प्रथा मातृवंशीय नायर लोगों में पायी जाती है।

बहुपति विवाह परिणाम (Consequences of Polyandry)

(1) गुण (Merits)–(1) बहुपति विवाह के कारण कम सन्ताने पैदा होती हैं। अतः यह प्रथा आदर्श परिवार के निर्माण एवं जनसंख्या वृद्धि को रोकने में सहायक है। (2) इस प्रकार के विवाह के कारण संपत्ति की संयुक्तता बनी रहती है। कृषि योग्य भूमि का बँटवारा न होने से वह टुकड़े–टुकड़ होने से बच जाती है। (3) बहुपति विवाह के कारण परिवार का विभजन एवं विघटन नहीं होने पाता, इस कारण से परिवार की सामूहिकता एवं एकता बनी रहती है। (4) ऐसे विवाह के कारण परिवार को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं आर्थिक क्रियाओं के सम्पादन में सभी का सहयोग प्राप्त होता है। साथ ही प्रकृति से संघर्ष भी सामूहिक रूप से किया जाता है।

(2) दोष (Demerits) –(1) इस प्रकार के विवाह के कारण स्त्रियों में बाँझपन आ जाता है। ऐसा कौनसे जैविकीय कारणों से होती है, यह अभी स्पष्ट नहीं है। पर यह वास्तविकता है कि बहुपति विवाही समाजों की जनसंख्या दिनोंदिन घट रही है। बहुपति विवाह में लड़कियों की तुलना में लड़के अधिक पैदा होते है। अतः स्वतः ही यौन असन्तुलन उत्पन्न हो जाती है, फलस्वरूप बहुपति प्रथा स्वतः चलती रहती है।(3) बहुपति विवाह से यौन रोग पनपते है एवं स्त्री का स्वास्थ्य क्षीण हो जाता है।(4) इस प्रकार की विवाह प्रथा वाले समाजों में स्त्रियों को कुछ अधिक यौन स्वतन्त्रता प्राप्त होने से वहाँ यौन अनैतिकता बड़ जाती है।

(ब) बहुपत्नी विवाह (Polygyny)

विवाह का एक रूप बहुपत्नी विवाह भी है जिसमें एक पुरूष एकाधिक स्त्रियों से विवाह करता है। कापड़िया का मत है कि भारतवर्ष में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन वैदिक युग से वर्तमान समय तक प्रचलित रहा है। इस प्रकार के विवाह भारत में प्राचीन समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्णो में पाये जाते थे। शूद्रों को छोड़कर शेष तीन वर्णो को अपने वर्ण के अतिरिक्त अपने से निम्न वर्ण की लड़कियों से विवाह करने की भी स्वीकृति प्राप्त थी। इस प्रकार ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो वर्ण की स्त्रियों के विवाह कर सकते थे। ऐसा कहा जाता है कि स्मृतिकार मनु के दस एवं याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं। अल्टैकर का मत है कि बहुपत्नी विवाह धनीं, शासक एवं अभिजात वर्ग के लोगो में सामान्य थी।

भारतीय धर्म–ग्रन्थों में सन्तान न होने पर दूसरा विवाह करने की स्वीकृति दी गयी है किन्तु सामान्य स्थिति में एकाधिक पत्नियाँ रखना उचित नहीं माना गया है। महाभारत में कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी पुत्र–सम्पन्न एवं धर्मपरायण स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह करता है उसका पाप कभी भी नहीं धुल सकता है। मनु, कौटिल्य और आपस्तम्ब आदि ने सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुपत्नीत्व को स्वीकार किया है किन्तु एकपत्नीत्व के आदर्श को सर्वोपरि रखा है। वर्तमान में बहुपत्नीत्व पर कानूनी रोक लगा दी गयी है।

बहुपत्नीत्व विवाह के परिणाम (Consequences of Polygyny) – बहुपत्नीत्व विवाह के लाभ एवं हानियाँ अग्रांकित है :

लाभ (Merit) – (1) बहुपत्नीत्व के कारण का भी पुरूषों की यौन इच्छाएँ परिवार में पूरी हो जाती हैं। अतः समाज में भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता में वृद्धि नहीं हो पाती है। (2) परिवार में अनेक स्त्रियाँ होने पर बच्चों का लालन–पालन एवं घर की देख–रेख सरलता से हो जाती है। (3) इससे परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति सुगमता से हो जाती है। (4) किसी समाज में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की अधिकता हो और एक विवाह प्रथा का पालन किया जाता है तो ऐसी दशा में कई स्त्रियों को विवाह से वंचित रहना पड़ेगा। विवाह के अभाव में उनमें कई विकार पैदा हो सकते है।

बहुपत्नी विवाह के कारण ऐसे समाजों के अधिकांशत धनी एवं समृद्ध लोगों में पाये जाते है। अतः ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तानें शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से उत्तम होती हैं।

हानियाँ (Demerits) –बहुपत्नी विवाह के कारण परिवार में संघर्व, ईर्ष्या एवं वैमनस्य का वातावारण उत्पन्न होती है। स्त्रियाँ परस्पर छोटी–छोटी बातों को लेकर झगड़ती रहती है। इससे परिवार की सुख–शान्ति समाप्त हो जाती है। (2) कई पत्नियाँ होने पर परिवार में सन्तानों की संख्या बढ़ जाती है। (3) ऐसे विवाहों के कारण स्त्रियाँ की समाजिक प्रतिष्ठा गिर जाती है और उनका शोषण होता है। (4) एकाधिक पत्नियाँ हाने पर एक पुरूष उन सभी की यौन इच्छाओं को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में समाज में यौन अनाचार पनपता है। (5) एकाधिक पत्नियाँ रखने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने पर समाज में विधवाओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

(2) द्वि–बहुपत्नी विवाह (Biogamy)

बहुविवाह का एक रूप द्वि–बहुपत्नी विवाह भी है। इस प्रकार के विवाह में एक पुरूष एक साथ दो स्त्रियों से विवाह करता है। कई बार पहली स्त्री से सन्तान न होने पर दूसरा विवाह कर लिया जाता है। भारत में दक्षिण की कुछ जनजातियो में यह प्रथा पायी जाती है। किन्तु वर्तमान में ऐसे विवाहों पर कानूनी रोक लगा दी गयी है।

(द) समूह विवाह (Group Marriage)

समूह विवाह में पुरूषों का एक समूह स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है और समूह का प्रत्येक पुरूष समूह की प्रत्येक स्त्री का पति होता है। परिवार और विवाह की प्रारम्भिक अवस्था में यह स्थिति रही होगी ऐसी उद्विकासवादियों की धारणा है। वेस्टरमार्क का मत है कि ऐसे विवाह तिब्बत, भारत एवं लंका के बहुपत्नी वाले समाजों में पाये जाते है। डॉ० सक्सेना का मत है कि बहुपति विवाही समाजों में आर्थिक स्थिति में सुधार होने पर पुरूष एकाधिक स्त्रियाँ रखतें है; तब बहुपति विवाह समूह विवाह का रूप ले लेता है। यदि हम समूह विवाह का प्रयोग इस अर्थ में करते हैं कि समूह का प्रत्येक पुरूष दूसरे समूह की प्रत्येक स्त्री का पति हो तथा उत्पन्न सन्तानों को भी सम्पूर्ण समूह की सन्तान समझा जाता हो, तो इस प्रकार के विवाह के उदाहरण विश्व में कही नहीं है।

हिन्दू–विवाह के स्वरूप (Forms of Hindu Marriage)

यहाँ हिन्दू–विवाह के 'स्वरूप' से हमारा तात्पर्य वैवाहिक सम्बन्ध में बँधने की पद्धति से है। अनेक स्मृतिकारों, गृह–सूत्रों, धर्म–सूत्रों, आदि में हिन्दू–विवाह के आठ स्वरूपों की विवेचना की गई है। वशिष्ठ ने छः स्वरूपों की ही व्याख्या की है। मनु ने जिन आठ स्वरूपों की व्याख्या की है, वे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन आठ स्वरूपों में से प्रथम चार स्वरूप ब्राह्म, देव, आर्ष और प्रजापत्य को श्रेष्ठ एवं धर्मानुकूल माना गया है। मनु द्वारा उल्लिखित आठ प्रकार के विवाह निम्नलिखित हैं–

1. ब्रह्म–विवाह (Brahma Marriage)

यह सबसे उत्तम कोटि का विवाह है जिसमें वर–कन्या का विधिवत प्रसन्नतापूर्वक माता–पिता की सहमति से विवाह होता है। पिता कन्या के लिए योग्य वर की खोज करके उसे अपने घर आमन्त्रित करता है और तक धार्मिक रीति–रिवाजों को यथविधि सम्पन्न करते हुए और कन्या को वस्त्र–अलंकार आदि से सुसज्जित करके उसे वर को दान–स्वरूप अर्पित करता है। इस प्रकार के विवाह के तीन आवश्यक तत्त्व है–माता–पिता की विवेकपूर्ण सहर्ष स्वीकृति, धार्मिक रीतिरिवाजों के अनुसार विवाह–संस्कार का होना और बिना किसी लोभ कन्या को योग्य वर को दान स्वरूप देना।

'याज्ञवल्क्य' ने लिखा है कि ब्रह्मा–विवाह उसे कहा जाता है जिसमें वर को बुलाकर शक्ति के अनुसार अलंकारों से अलंकृत कर कन्या को दान में दिया जाता है।[8] गौतम ने धर्म सूत्र में इनकी विवेचना करते हुए कहा है कि ''वेदों का ज्ञाता, अच्छे आचरण वाला, बन्धु–बान्धवों से सम्पन्न शीलवान वर को वस्त्र जोड़े एवं अलंकारों से सुसज्जित कन्या–दान ही ब्राह्म–विवाह है।''[9]

यहाँ 'दान' शब्द का अर्थ भ्रामक रूप में नहीं लेना चाहिएं प्राचीन युग में दान का अर्थ भिक्षा से नहीं था। कन्या को पवित्र अग्नि के समक्ष पवित्र दान के रूप में प्राप्त किया जाता था और इस प्रकार वह एक पवित्र धरोहर या अमानत होती थी।

2. देव–विवाह (Deva Marriage)

इस विवाह के अन्तर्गत कन्या का पिता एक यज्ञ की व्यवस्था करता है एवं वस्त्र–अलंकार से सुसज्जित कन्या का दान उस व्यक्ति को कर देता है जो उस यज्ञ को समुचित ढ़ग से पूरा करता है। प्राचीन काल में गृहस्थ लोग समय–समय पर यज्ञ करवाते थे और ऋषियों के साथ आए हुए नवयुवक–पुरोहितों में से किसी के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देते थे। देवताओं की पूजा के समय इस प्रिकार का विवाह सम्पन्न होता था, अतः इसका नाम देव–विवाह पड़ गया। आज न यज्ञों का महत्त्व है और न ही देव–विवाह का प्रचलन। मनु ने लिखा है कि सद्कर्म में लगे पुरोहित को जब वस्त्र और आभूषणों में सुसज्जित कन्या दी जाती है, तो इसे देव–विवाह कहा जाता है। डॉ. इन्द्रदेव के अनुसार, ''यज्ञों की महत्ता और अपनी कन्या से किसी के विवाह को उसके आदर की पराकाष्ठा मानना, विवाह के इस रूप के कारण प्रतीत होते हैं।''

देव–विवाह की मनु ने बहुत ही प्रशंसा की है और यहाँ तक कहा है कि इस विवाह के उत्पन्न सन्तान सात पीढ़ी ऊपर और सात पीढ़ी नीचे तक के लोगों का उद्धार कर देती है। पर मनु के विपरीत अनेक स्मृतिकारों ने देव–विवाह को अनुचित मानते हुए कहा है कि देवताओं के पूजन के समय पूजा करवाने वाले वर और वधू की आयु में काफी अन्तर रह जाने की सम्भावना बती रहती है। यद्यपि अब ऐसे विवाहों का प्रचलन नहीं है। ए. एस. अल्तेकर के मतानुसार, 'देव–विवाह वैदिक यज्ञों के साथ ही लुप्त हो गए।''[10]

3. आर्ष–विवाह (ArshaMarriage)

मनु के अनुसार इस प्रकार के विवहों में वर अपने श्वसुर को एक गाय और एक बैल अथवा इनके दो जोड़े देता है तथा पत्नी प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार जब दो गाय लेकर कन्या–दान किया जाए तो उसे आर्ष–विवाह कहते हैं। इस विवाह का सम्बन्ध '.ऋषि' से है। प्राचीन काल में ऋषियों का बड़ा सम्मान था और उन्हे अपनी कन्या सौंपना गौरव की बात समझी जाती थी। आध्यात्मिक–शक्ति के प्रतीक ऋषि लोग प्रायः विवाह के प्रति उदासीन हुआ करते थे। अतः विवाह के इच्छुक ऋषि को अपने भावी श्वसुर को उपर्युक्त सामग्री देनी पड़ती थी ताकी यह सिद्ध हो जाए कि ऋषि ने विवाह–बन्धन को स्वीकार कर लिया है। यह सामग्री कन्या–मूल्य (Bride-Price) नहीं होती थी बल्कि ऋषि के गृहस्थ जीवन–यापन करने के निश्चय की सूचक होती थी। यह एक प्रकार की भेंट थी जिसे पाकर कन्या के माता–पिता कन्या को ऋषि की पत्नी के रूप में सौंप देते थे और दोनों को पवित्र गृहस्थ–धर्म निभाने का अवसर देते थे। अल्तेकर (Altekar) का मत है कि एक गाय और बैल देने की प्रथा कन्या–मूल्य के अवशिष्ट चिन्ह के रूप में थी। वर्तमान में ऋषि संस्कृति का लोप होने से अब इसका प्रचलन नहीं है।

4. असुर–विवाह (Asura Marriage)

इस विवाह के अन्तर्गत विवाह का इच्छुक व्यक्ति अपनी इच्छा से कन्या के पिता या कुटुम्बियों या कन्या को धन देकर विवाह करता है। इस प्रकार से वह कन्या–मूल्य (Bride Price) चुकाता है। कन्या का मूल्य पहिले ही निश्चित हो जाता है जिसे चुकाये बिना विवाह नहीं हो सकता। कन्या–मूल्य की कोई सीमा नहीं होती। कन्या के गुण और कुल आदि के आधार पर इसका निश्चय होता है। विद्वान के अनुसार कन्या–मूल्य की प्रथा सम्भवतः इस विचार पर आधारित है कि मूल्य लेकर कन्या के महत्त्व और सम्मान को प्रतिष्ठित किया जाए। कन्या–मूल्य नकद भी चुकाया जा सकता है और वस्तु के रूप में भी। वैदिक युग में कन्या–मूल्य प्रचलित था, यद्यपि इसे हीन दृष्टि से देखा जाता था। महाभारत–काल में पाण्डु का माद्री के साथ विवाह इसका अच्छा उदाहरण है।

कन्या–मूल्य के उदाहरण आज के सभ्य समाज में भी देखने को मिलते है, चाहे वे प्रत्यक्ष न होकर प्रच्छन्न हों। निम्न जातियों में तो असुर–विवाहों का प्रचलन है ही, लेकिन उच्च जातियों में भी वर अपने से बहुत कम उम्र की कन्या से शादी करने के लिए मोल–भाव करके कन्या लड़का खुद कन्या पाने के लिए कन्या के पिता से सौदेबाजी करके

अपना विवाह रचता है। ये सब असुर–विवाह के उदाहरण ही कहे जाने चाहिए। सामान्यतया उच्च जातियों में इस प्रकार के विवाह निन्दनीय समझे जाते हैं।

5. गान्धर्व–विवाह (Gandharva Marriage)

इस प्रकार को हम 'प्रेम–विवाह' की भी संज्ञा दे सकते हैं। युवक–युवती तब परस्पर प्रेम या काम के वशीभूत होकर स्वेच्छा से संयोग कर लेते हैं तो ऐसे विवाह को गान्धर्व–विवाह कहा जाता है। 'याज्ञवल्क्य' पारस्परिक स्नेह द्वारा होने वाले विवाह को गान्धर्व–विवाह कहते हैं। महर्षि गौतम के अनुसार, ''इच्छा रखने वाली कन्या के साथ अपनी इच्छा से सम्बन्ध स्थपित करना गान्धर्व–विवाह कहलाता है।''[12] वात्स्यायन भी अपने 'कामसूत्र' में इसे एक आदर्श विवाह स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के विवाहों मं माता–पिता की इच्छा का कोई महत्त्व नहीं होता। वास्तविक विवाह से पूर्व भी प्रेमिका से शरीर–संयोग हो सकता है और बाद में उचित विधियों से सम्पन्न आज के 'प्रेम–विवाह' प्राचीनकाल के गान्धर्व–विवाह ही माने जा सकते हैं। प्राचीनकाल में ऐसे विवाह प्रायः रूपवान गान्धर्वों और कामुक किन्नरियों के बीच होते थे, इसीलिए इनका नाम गान्धर्व–विवाह पड़ गया।

6. राक्षस–विवाह (RakshasaMarriage)

लड़ाई–झगड़ा करके, छीन–झपट कर, कपटपूर्वक या युद्ध में हरण करके किसी स्त्री से विवाह कर लेना राक्षस–विवाह कहा जाता है। 'मनु' के अनुसार, ''मारकर, अंग छेदन करके, घर को तोड़कर, हल्ला करता हुआ, रोती हुई कन्या को बलात् अपहरण ''युद्ध में कन्या का राक्षस–विवाह कहलाता है।'' याज्ञवल्क्य के अनुसार 'राक्षसो युद्ध हरणात्' अर्थात् ''युद्ध में कन्या का अपहरण करके उसके साथ विवाह करना ही राक्षस विवाह है।'' इस प्रकार के विवाहों को प्रचलन तब तक अधिक था जब युद्धों का बहुत महत्त्व था और स्त्री को युद्ध का पुरस्कार माना जाता था। स्त्रियों को युद्ध में जीतकर प्राप्त करना गौरव की बात मानी जाती थी। अर्जुन सुभद्रा को जबरदस्ती उठा ले गया और श्री कृष्ण भी रूक्मिणी को इसी प्रकार लाए थें। युद्ध का प्रत्यक्ष सम्पर्क अधिकांशतः क्षत्रियों से था, अतः इस प्रकार के विवाह विशेष रूप से क्षत्रियों में ही होते थे और इसीलिए उन्हें राक्षस–विवाह न कह कर क्षात्र–विवाह भी कहा जाता है।

समय के साथ इस प्रकार के विवाहों का विरोध होता गया और वर्तमान समय में ऐसे विवाहों का कोई अस्तित्व नहीं है। फिर भी इस प्रकार के विवाह के अवशेष–चिन्ह प्रथा में जरूर पाए जाते हैं जिसमें केवल रस्मी तौर पर दोनों पक्षों में बनावटी युद्ध होता है और वर–पक्ष विजयी होकर वधू ब्याह ले जाता है।

7. प्रजापत्य–विवाह (PrajapatyaMarriage)

यह विवाह अपने स्वरूप में ब्रह्म–विवाह के समान ही होता है। इनमें कन्या का पिता वर–वधू को वैवाहिक जीवन–सम्बन्धी उपदेश देकर और 'तुम दोनों मिलकर गृहस्थ का पालन करना तथा तुम दोनों का जीवन सुखी और समृद्ध हो', यह कह कर विधिवत वर की पूजा करके कन्या का दान करता है। 'सत्यार्थप्रकाश' में कहा गया है कि 'वर और वधू दानों का विवाह धर्म की वृद्धि के लिए हो', यह कामना करना ही प्रजापत्य का आधार है। कुछ विद्वानों का मत है कि ब्रह्म और प्रजापत्य–विवाह एक ही थे और विवाहों की संख्या बढ़ाने के लिए ही सम्भवतः इसका बाद में प्रचलन हुआ। वशिष्ठ और आपस्तम्ब–इन दोनों ही प्रारम्भिक ऋषियों ने प्रजापत्य–विवाह का कोई उल्लेख नहीं किया है। डॉ. अल्तेकर का कहना है कि ''विवाह के आठ स्वरूपों को संख्या का पूर्ण करने के लिए ही इस पद्धति को पृथक रूप दे दिया गया है।''[11]

8. पैशाच–विवाह (Paishacha Marriage)

यह विवाह अति निम्न कोटि का है जिसमें सोई हुई, शराब आदि से उन्मत्त या जादू अथवा शक्ति के वशीभूत स्त्री के साथ किसी न किसी प्रकार से जबरदस्ती या धोखा देकर यौन–सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता है। यह स्थिपति पूर्णतः अनाचार और अन्याय की स्थिति है, लेकिन स्त्री के जीवन को बचाने के लिए बाद में विवाह–संस्कार पूरा कर स्त्री–पुरूष को समाज वर–वधु के रूप में स्वीकार कर लेता है। आज भी यदा–कदा ऐसे पैशाच–विवाह के उदाहरण मिल जाते हैं। आज के सभ्य समाज में भी आए दिन बलात्कार की घटनाएँ होती रहती हैं और कुछ मामलों में

कन्या के माता–पिता बदनामी के डर से न्यायालय की शरण न लेकर उस लड़के से कन्या की शादी कर देते हैं जिसने बलात्कार किया हो। प्रायः ऐसे मामले प्रकाश में नहीं आ पाते।

वर्तमान में हिन्दुओं में विवाहों के उपरोक्त समस्त स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होते, लेकिन इनमें से कुछ स्वरूप थोड़े बहुत संशोधनों के साथ हमें दिखाई देते है। डॉ. डी. एन. मजूमदार ने 'Races and Culture of India' में लिखा है कि, ''हिन्दु समाज अब केवल दो स्वरूपों को मान्यता देता है–ब्रह्म एवं असुर, उच्च जातियों में पहले प्रकार का एवं निम्न जातियों में दूसरे प्रकार का विवाह प्रचलित है। यद्यपि उच्च जातियों में असुर–प्रथा पूरी तरह नष्ट नहीं हुई है।''

हिन्दू–विवाह– एक धार्मिक संस्कार

हिन्दू विवाह के उद्देश्य एवं स्वरूपो को समझने से यह ज्ञात होता है कि हिन्दू विवाह अनेक धार्मिक विधानों से किया गया एक पवित्र संस्कार है, न कि एक संविदा अथवा 'मित्रतापूर्ण समझौता या ऐसा ही कोई अस्थाई बन्धन। 'संस्कार' शब्द का शाब्दिक आशय है कि 'शुद्धिकरण' की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति में पविर्तन लाना। डॉ. आर. एन. सक्सेना ने लिखा है कि ''संस्कार शब्द का तात्पर्य ऐसे धार्मिक अनुष्ठान से है जिसके द्वारा मानव–जीवन की क्षमताओं का उद्घाटन होता है, जो मानव को सामाजिक जीवन के योग्य बनाने वाले आन्तरिक परिवर्तनों का प्रतीक होता है और जिसके द्वारा संस्कार दीक्षित व्यक्ति को स्तर विशेष प्राप्त होता है। गर्भाधान से लेकर मृत्यु और उसके उपरान्त तक अनेक संस्कार माने गए हैं, पर कुल संस्कारों की संख्या और स्वरूप के विषय में स्मृतिकार एकमत नहीं हैं, लेकिन यह अवश्य है कि विवाह को सभी ने एक आवश्यक संस्कार माना है, जिसके बिना मनुष्य का धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष असम्भ है।''[13]

इस दृष्टिकोण से हिन्दू विवाह को निश्यित ही एक संस्कार के रूप में विश्लेषित किया जा सका है, क्योंकि हिन्दू विवाह आरम्भ से लेकर अन्त तक अनेक धार्मिक क्रियाओं, अनुष्ठानों, विधि–विधानों आदि के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। हिन्दू विवाह के द्वारा ही एक व्यक्ति अपने जीवन को धर्म की ओर मोड़ता है, उसे परिष्कृत करता है, अपने मानवीय स्वभाव का सामाजिकरण करता है तथा अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण करता है। हिन्दुओं में विवाह इस प्रकार एक पवित्र एवं अटूट बन्ध नही नहीं बल्कि जन्म–जन्मान्तरों तक चलने वाला एक अलौकिक साथ माना गया है।

हिन्दु–विवाह को एक धार्मिक संस्कार (Sacrament) स्वीकार किए जाने कुछ निश्चित विशेषताएँ हैं जो निम्नलिखित हैं–

(1) धर्म पर आधारित विवाह (Marriage Based on Religion) – हिन्दु–विवाह के उद्देश्यों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू–विवाह का सबसे प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण लक्ष्य धर्म है। हिन्दू व्यक्ति धर्म के लिए ही विवाह करता है। डॉ. के. एम. कापडिया ने लिखा है कि 'जब हिन्दू विचारकों ने धर्म को विवाह का प्रथम तथा सर्वोच्च लक्ष्य माना और सन्तानोत्पादन को दूसरा स्थान दिया, तो स्वाभाविक है कि विवाह पर धर्म का आधिपत्य हो जाता है।''[14] 'मनुसंहिता' एवं 'महाभारत' में भी 'पुत्र' शब्द का व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि ''जो अपने पिता को नरक जाने से बचाए वही पुत्र है।''

(2) विवाह का स्थायित्व (Stability of Marriage) – हिन्दुओं में विवाह अत्यन्त पवित्र बन्धन के रूप में ईश्वर–प्रदत्त साथ के रूप में देखा जाता है। हिन्दुओं में यह मान जाता है कि विवाह–सूत्र में बँधने वाल व्यक्ति न सिर्फ मृत्यु तक बल्कि जन्म–जन्मान्तरो तक आपस में साथ–साथ रहते हैं। भारतीय हिन्दु–विवाह में 'तलाक' एवं 'विवाह–विच्छेद' जैसी कोई अवधारण नहीं पाई जाती। इसी कारण विवाह का स्थायित्व बना रहता है।

(3) ऋणों से मुक्त होने के लिए (For Getting Rid of Rinas) – हिन्दुओं में यह मान्यता है कि व्यक्ति पर जन्म से ही अनेक ऋण होते हैं और विवाह करके ही वह पंचमहायज्ञों द्वारा इन ऋणों से छुटकारा पा सकता है। अपना विवाह कर घर बसाकर ही व्यक्ति देव ऋण, ऋषि–ऋण एवं पितृ–ऋण से उऋण हो सकता है। विवाह को 'मनु' ने स्वर्ग की सीढ़ी बताया है। धर्म–ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि विवाह किए बिना व्यक्ति को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता।

(4) धार्मिक अनुष्ठान एवं संस्कार (Rituals and Ceremonies)– संस्कार के दृष्टिकोण से हिन्दू–विवाह की सबसे प्रमुख विशेषता विवाह की प्रक्रिया का अनेक धार्मिक अनुष्ठान एवं संस्कारो से परिपूर्ण होना है। पी.वी काणे ने हिन्दू–विवाह के सन्दर्भ में 39 प्रमुख अनुष्ठानों एवं संस्कारों का उल्लेख किया है। इन धार्मिक अनुष्ठानों एवं संस्करों को पूर्ण किए बिना हिन्दू–विवाह पूर्ण नहीं माना जाता–

(क) वाग्दान– इस प्रकार में वर–पक्ष विवाह का प्रस्ताव रखता है एवं कन्या–पक्ष द्वारा उस प्रस्ताव को स्वीकार किया जाता है। यह सब वैदिक–मन्त्रों एवं गृह–सूत्रों द्वारा किए जाने की व्यवस्था की गई है. लेकिन धीरे–धीरे इस स्थिति में परिवर्तन होता गया। विशेषकर मध्यकाल के पश्चात् स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा कम हो गई थी। इसके बाद से ही यह प्रस्ताव सामान्यतः कन्या–पक्ष द्वारा रखा जाता है एवं वर–पक्ष द्वारा स्वीकार किया जाता है।

(ख) कन्यादान– इस संस्कार में धार्मिक आधार पर पिता अपनी पुत्री को वर दान देता है। धर्मशास्त्रों में कन्यादान को बहुत बड़ा दान बताया गया है। कन्यादान के समय कन्या का पिता वर से कहता है, ''अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक नामवाली, आभूषणों से युक्त, इस कन्या को तुम स्वीकार करो।'' तब वर कन्या को स्वीकारते हुए कहता है कि, ''तू वृद्धावस्था मेरे साथ प्राप्त कर, मेरे द्वारा दिए हुए वस्त्र धारण कर, कामी पुरूषों से अपनी रक्षा कर तथा सौ वर्ष की आयु वाली हो एवं धन और सन्तान वाली हो।'' बाद में वर–वधू दोनों उपस्थित लोगों से कहते हैं कि हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में रहने के लिए एक–दूसरे को ग्रहण करते हैं, हमारे दोनों के हृदय जल के समान शान्त और मिले हुए रहेंगे। इस तरह कन्यादान में पिता वर से यह आश्वासन लेता है कि वह धर्म, अर्थ, काम आदि की पूर्ति में कभी अपनी पत्नी का त्याग नहीं करेगा। इस तरह दोनों आजीवन साथ–साथा रहेंगे।

(ग) विवाह होम– हिन्दुओं में विवाह पवित्र अग्नि की साक्षी में सम्पन्न होता है। वर एवं वधू अग्नि में अनेक आहुतियाँ डालते हुए मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। इन मन्त्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि अग्नि कन्या की रक्षा करे, उसकी सन्तति को परमात्मा लम्बी उम्र दे, वह जीवित रहने वाले बच्चों की माँ हो एवं पुत्र आनन्द–प्राप्त कर।

(घ) पाणिग्रहण– 'पाणिग्रहण' का शाब्दिक अर्थ है दूसरे के हाथ को ग्रहण करना। वर–वधू के साथ को पकड़ कर छः मन्त्रों का उच्चारा करता है। ये मन्त्र एक तरह से प्रतिज्ञा के रूप में है जिन्में वर–वधु से कहता है–''मैं ऐश्वर्य, सुसन्तान एवं सौभाग्य के लिए तेरा हाथ ग्रहण करता हूँ। तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक रहना, तेरा पोषण करना मेरा धर्म है और मेरे द्वारा सन्तान को जन्म देते हुए तू सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करना।''

(ङ) अग्नि परिणयन– इसमें वर–वधू दोनों अग्नि की परिक्रमा करते हैं और अग्नि को साक्षी करेक परिणय–बन्धन को स्वीकार करते हैं। वर कहता है– ''हे वधू मैं समावेद के समान प्रशंसित हूँ और तू ऋग्वेद के समान प्रशंसित है, तू पृथ्वी के समान है और मैं सूर्य के समान हूँ हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें, साथ मिल कर उत्तम प्रजा उत्पन्न करें, हमारे बहुत से पुत्र हों, हम और हमारे पुत्र सौ वर्ष तक देखते–सुनते रहें और सौ वर्ष जीवित रहें।''

(च) अश्वारोहण– इस संस्कार में कन्या का भाई कन्या का पैर उठा कर पत्थर की शिला पर रखवाता है। यहाँ वर–वधू से कहता है, ''हे देवी! तू इस पत्थर पर चढ़ और इस पत्थर के समान ही धर्म–कार्यो में दृढ़ बनी रही।'' यहाँ वधू को सभी परिस्थितियों में दृढ़ रहने को कहा गया है।

(छ) लाजा–होम –इस संस्कार में वर–वधू दोनों पूर्व की ओर मुँह करके खड़े हो जोते है. फिर वधू अपने भाई से भुने हुए चावल लेकर वेदी में डालते हुए तीन मन्त्रों का उच्चारण करती है। वधू कहती है कि वह ईश्वर की आज्ञा–पालन के लिए अपने पिता–कुल को छोड़कर पति–कुल में जाने के लिए तैयार है। वह प्रार्थना करती है कि, ''मेरे पति दीर्घजीवी हों तथा पितृ–कुल एवं पति–कुल के लोग धन–धान्य से परिपूर्ण हों।''साथ ही वही यहाँ ईश्वर से प्रार्थना करती है कि पति के साथ उसका प्रेम निरन्तर बढ़ता रहे।

(ज) सप्तपदी– सप्तपदी नामक संस्कार का आशाय है ग्रन्थि बन्धन के लिए उत्तर दिशा की ओर पर एवं वधू का सात कदम चलना। यहाँ प्रत्येक कदम मन्त्रोच्चारण के साथ उठाया जाता है। इन सात मन्त्रों में वर–वधू की विभिन्न आवश्यकताओं अन्न, बल, धन, सुख, सन्तान, प्राकृतिक सहायता व सखाभाव की कामना करता है।

(5) पतिव्रता का आर्दश (Ideal of Pativrata) – हिन्दू–विवाह के द्वारा विवाह–सूत्र में बँधने वाली स्त्री से सामान्यतः यह अपेक्षा की जाती है कि वह पतिव्रत धर्म का पालन कर। पति की सेवा तथा उसकी सुख–सुविधा का ध्यान रखे।

इसी पतिव्रता के आदर्श एवं पति को परमेश्वर के रूप में स्वीकार कर लेने की स्थिति ने ही हिन्दुओं में 'सती–प्रथा' को विकसित किया है।

(6) पत्नी के सम्बोधक शब्द – हिन्दू–पत्नी के जो सम्बोधक शब्द हैं उससे भी यह ध्वनि निकलती है कि पत्नी का विवाह काम–तृप्ति के लिए नहीं वरन् धार्मिक संस्कारों की पूर्ति के लिए किया गया है। उदाहरणार्थ, पत्नी को धर्मपत्नी, सह–धर्मिणी आदि कहा जाता है। इन शब्दों का आशय है कि पत्नी–पति के धर्म–कार्यो में सहभागी है।

(7) विवाह एक पवित्र बन्धन – हिन्दू–विवाह इसलिए भी एक धार्मिक संस्कार है कि यह स्त्री–पुरूष का अन्यन्त पवित्र और ईश्वर द्वारा निश्चित बन्धन माना जाता है। यह कोई साताजिक या वैधानिक समझौता नहीं है लिसे कतिपय शर्तो को पूरा न होने पर तोड़ दिया जाए। यह तो एक ऐसा पावन बन्धन है जो कल्पना में भी दूषित और त्याज्य नहीं माना जाता। इहलोक में ही नहीं, परलोक में भी पति–पत्नी का साथ माना जाता है। हिन्दू–विश्वास के अनुसार पत्नी को पति से मृत्यु के बाद भी बँधी हुई माना जाता है। पत्नी को पतिव्रत्य करने और पतिव्रत्य के आदर्शो का निर्वाह करने का उल्लेख विवाह के समय किया जाता है। यह स्पष्ट ही एक धार्मिक संस्कार की अभिव्यक्ति है। हिन्दू शास्त्रकारों और विश्वासों का यही निष्कर्ष है कि जब तक विवाह को धार्मिक स्वरूप नहीं दिया जाएगा तब तक पति–पत्नी में स्थायी सम्बन्धों का विकास नहीं हो सकता।

(8) विवाह स्वर्ग का द्वार – हिन्दू धर्म–शास्त्रों में विवाह को स्वर्ग का द्वार कहा गया है। विवाह द्वारा ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके विभिन्न यज्ञों को सम्पन्न करते हुए धार्मिक लाभ प्राप्त करता है। विवाह के बिना व्यक्ति वानप्रस्थ और संन्यास–आश्रम के उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। धर्म–शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि अविवाहित ऋषियों और तपस्वियों को स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सका। जीवन में विवाह के धार्मिक महत्त्व को इंगित करते हुए ही मनु का कथन है कि ''जिस प्रकार सभी नदी–नाले अन्त में समुद्र में जाकर गिरते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रमों का वास्तविक आधार गृहस्थाश्रम (विवाह) ही है।''

उपसंहार :

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि हिन्दू–विवाह मानव–जीवन का एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक संस्कार है। यद्यमि आधुनिक हिन्दू–कानून के रचयिताओं ने हिन्दू–विवाह को कुछ अंशों में समझौता या प्रसंविदा माना है, तथापि न्यायालयों ने इस संस्कार के रूप में भी स्वीकार किया है। हिन्दू विवाह की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें यौन–सम्बन्धों को उतना अधिक महत्त्व न देकर विवाह के धार्मिक पक्ष पर बल दिया गया है। हिन्दुओं के लिए विवाह एक धार्मिक संस्कार है एवं जिसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्तियों को अपने धार्मिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के अवसर प्रदान करना है। मूलतः यही कारण है कि हिन्दू संस्थाओं में से अनेक के अत्यधिक रूढ़िगत हो जाने के बाद भी 'विवाह' का महत्त्व कम नहीं हुआ है। पवित्रता, धार्मिकता, एक विवाही प्रथा एवं स्थायित्व आदि हिन्दू–विवाह की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनकी ओर पश्चिमी समाजों की निगाहें टिकी हुई हैं और अब वहाँ भी हिन्दू–विधि एवं साँसारिक आधारों पर विवाह–समारोह आयोजित करने की खबरें हमें यदा–कदा सुनाई देती हैं। हिन्दू–विवाह जहाँ अपने व्यक्तियों को मानसिक स्थायित्व, धार्मिक आस्था, त्यागमय जीवन की प्रेरणा आदि प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर वह सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करता है।

संदर्भ सूची :–

[1] उद्वाहतत्व–तेन भर्यात्व सम्पादक ग्रहण विवाहः। मनुस्मृति, 3/20।

[2] लूसी मेयर, सामाजिक नृ–विज्ञान की भूमिका, हिन्दी अनुवाद, पृ० 90।

[3] डब्ल्यू० एच० आर० रिवर्स, सामाजिक संगठन, हिन्दी अनुवाद, पृ० 29।

[4] Westermark, The History of Human Marriage, Vol. I, p.26

[5] "Marriage is an institution admitting men and women to Famaily life"-B.S. Bogardus, Sociology, p. 79.

[6] Majumdar and Madan, An Introduction to Social Anthropology, p. 79.

[7] याज्ञवल्क्य 1/58

[8] महर्षि गौतम : धर्म सूत्र, अध्याय 3, सूत्र 4.

[9] A.S Altekar: The Position of women in Hindu Civilization, p.45

[10] A.S Altekar: op. cit, pp. 46-47

[11] Dr. R.N. Saxena: भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थाएँ, पृ. 22–23